अध्याय 3

सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में मनोविज्ञानपरक प्रयोग

अध्याय 3

सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में मनोविज्ञानपरक प्रयोग

डॉ. मधुकर जैन के मतानुसार "मनोविज्ञान एक विकासशील अध्ययन प्रक्रिया है जिसके आधार पर मन की गतिविधियों को कार्यकारण शृंखला से बांधने का प्रयास किया जाता है।"[1] डॉ. रामनाथ शर्मा का मंतव्य है – "मनोविज्ञान मन का विज्ञान है।"[2] फ्रायड अतृप्त दमित इच्छाओं का गुप्त स्थान मन को ही मानता है। वास्तव में, मनोविज्ञान का क्षेत्र व्यापक है। इसके अंतर्गत सामाजिक समूह बुध्दि एवं व्यवहार के साथ-साथ पशु, बालशिक्षा, यौन मनोविज्ञान आदि का अध्ययन किया जा सकता है। यौन मनोविज्ञान को काम मनोविज्ञान नाम से पुकारा जा सकता है। "यहाँ काम का अर्थ दो रूपो में लिया जाता है। एक व्यापक और दूसरा संकुचित, व्यापक अर्थ में हम इसका अर्थ इच्छा एवं कामना से लेते हैं और संकुचित रूप में स्त्री-पुरूष की परस्पर संभोगेच्छा के साथ उसका अर्थ जड़ा जा सकता है "काम" का कामशास्त्र में यही अर्थ है।"[3]

स्त्री-पुरूषों में निसर्गत: एक दूसरों के प्रति आकर्षण रहता है। एक नैसर्गिक शक्ति इन दोनों को एक दूसरों की तरफ खींचती है। स्त्री-पुरूष के जीवन में कामसुख का अनन्यसाधारण महत्व है। काम का संबंध प्राय: शरीर के सभी इंद्रियों से होता है परंतु इसका अधिक संबंध मन के साथ जुड़ा होता है।

सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में अभिव्यक्त मनोविज्ञान परक प्रयोग को निम्नांकित शीर्षकों में बाँटा जा सकता है:-

1. प्रेम और यौन्जन्य मनोविज्ञान
2. स्वप्न मनोविज्ञान
3. प्रभावजन्य मनोविज्ञान
4. असंगत जीवन से उद्भुत मनोविज्ञान
5. खण्डित व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम

1. प्रेम और यौनजन्य मनोविज्ञान

"आठवाँ सर्ग" नाटक में नाटककार ने यौन और प्रेमजन्य मनोविज्ञान का वर्णन पेश किया है। इस में प्रियंगुमंजरी के सहज और निर्मल प्रेम को उभारा है। नाटककार ने इस नाटक में यौनसंबंधी कई दृश्य भी चित्रित किये हैं – कीर्तिभट्ट, प्रियंवदा और अनसूया दोनों के प्रति आसक्त है; उसकी यह आसक्ति प्रियंवदा के साथ प्रस्तुत किये गये संवादों से स्पष्ट होती है। जैसे – "देखो, आज मदनोत्सव का दिन है और मेरे उद्यान में अशोक और बकुल के पेड़ सूखे, ठूँठ–जैसे खड़े हैं। संध्या समय कृपा कर मेरे घर पधारो। नूपुरों की मधुर झंकार के साथ मेरे अशोक पर पदप्रहार कर दो, अपने सुगन्धित मुँह से मदिरा का एक घूँट मेरे बकुल पर डाल दो, ताकि दोनों हरे–भरे हो जायँ, लद उठें फलों और फूलों से ...।"[4] प्रियंवदा की तरह अनसूया को देखकर भी उसकी कामपिपासा जाग उठती है वह अनसूया को यौनोत्तेजक प्रसंगों से छेडना चाहता है। यहाँ कीर्तिभट्ट की यौन जिजिविषा स्पष्ट होती है।

अनसूया और प्रियंवदा के संवादों के माध्यम से भी कालिदास और प्रियंगुमंजरी के कमनीय एवं उद्दाम कामसंबंधों की रमणीय झाँकी देखने को मिलती है। जैसे –

"अनसूया : प्रियंवदे! ऐसी बेसुध नींद भला कैसे आ पाती है?

प्रियंवदा : आ जाती है, सखि!... नए–नए ब्याह के बाद एक मास का लम्बा वियोग था। पतिदेव से वह रत्नाखण्ड सुना होगा। जी भर बातें की होंगी।... आँखों में ही कट गयी होगी सारी रात।"[5]

यहाँ प्रियंवदा रतिरहस्य में निपुण देखने को मिलती है। कालिदास प्रियंगु का संयोग, उनकी कामक्रीडा, शयनागर से आनेवाली पुष्पों की गंध, शैय्यापर पुष्पों का दबना, बाँहों का कसाव, टूटी हुई मेखला, कर्णफूल आदि के माध्यम से नाटककार ने यौन मनोविज्ञान के साथ–साथ कामोत्तेजना को बढ़ावा दिया है। नाटककार ने कालिदास और प्रियंगु के रतिरहस्य को अनसूया और प्रियंवदा के माध्यम से पाठकों के मनःपटल पर उभारने का प्रयत्न किया है। इस यौन मनोविज्ञान में शृंगार के साथ–साथ नारियों की सलज्जता को भी सामने पेश किया है। यहाँ संयोग शृंगार का प्रभावी चित्रण नाटककार ने दर्शकों के मनःपटलपर चित्रांकित करते हुये यौन मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक नया कदम उठाया है। डॉ. दूबे की राय में "प्रस्तुत नाट्यरचना कालिदास और प्रियंगुमंजरी के सहज और निर्मल प्रेम पर आधारित है। इस प्रेम प्रसंग के अतिरिक्त नाटककार ने यौन संबंधी कई सांकेतिक दृश्य–चित्र भी उपस्थित किये हैं। पात्रों के वार्तालाप के क्रम में यौन प्रसंगों की कई इंगितियाँ उभरती हैं।"[6] प्रियंवदा ने रतिज में दंतक्षत और नखविन्यास पर प्रकाश डाला है। वह कहती है – "कुछ पास जाना, तो देखोगी कि उनकी देहपर कितने ही दंतक्षत और नखविन्यास हैं।"[7]

सुरेंद्र वर्मा लिखित "द्रौपदी" में प्रारंभ से लेकर अंततक नाटककार ने प्रेम और

यौनजन्य मनोविकारों का यथार्थता की धरातल पर चित्रांकन किया है। यहाँ मनमोहन, अनिल, अलका, राजेश, वर्षा, वंदना, रंजना आदि सभी पात्र प्रेम और यौनजन्य मनोविकारों से पीडित हैं। मनमोहन अपनी पत्नी सुरेखा को छोडकर अन्य औरतों के सान्निध्य में आनंद प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, दुःखद क्षणों में वह उनके सान्निध्य में रहकर अपनी पीडा को शांत बना देता है। अर्थात् एक पति के रूप में घरवाली से प्रेम करने की अपेक्षा यौनजन्य मनोविकारों से पीडित होकर बाह्य संबंधों की तलाश करने लगता है। इन बाह्य परिस्थिति के शिकंजे में अटककर वह अपने परिवार की तथा बालबच्चों के प्रति अपना कर्तव्य निभाने में असमर्थ बनता है।

पिताजी के अनुकरण पर अनिल और अलका पूर्ण रूप में प्रेम और यौनजन्य मनोविकारों से संत्रस्त बनते हैं। उनका बेटा अनिल एल.एस.डी. का शिकार बनकर अश्लील साहित्य पढ़ने लगता है और वर्षा के साथ प्रेम और यौनसंबंध स्थापित करना चाहता है। अनिल और वर्षा के रूप में नाटककार ने आज के युवकों की प्रेम और यौनसंबंधों की विकृति पर प्रकाश डाला है। मनमोहन की बेटी अलका पढ़ाई के बहाने सिनेमा थिएटर में अपने प्रेमी राजेश के साथ जाती है। अर्थात विवाहपूर्व यौनसंबंध रखना भारतीय संस्कृति में एक मनोविकृति ही है। आधुनिक युग में प्रेम और यौन संबंधों की चर्चा नाते-रिश्ते के संबंधों की दीवारों को तोड़कर खुले तौर पर की जाती है अर्थात् यह भी एक यौन मनोविकृति ही है। सुरेखा अपनी पुत्री अलका से प्रेमप्रसंगों की चर्चा करते हुये पूछती है कि प्रेम का मामला कहाँतक पहुँचा है? इतना ही नहीं वह अपनी बेटी को प्रेम की सफलता के बारे में कई सुझाव भी देना चाहती है - "जबरदस्ती क्यों, राज़ी-खुशी देती जा उसे जो कुछ वो चाहता है! ....कहाँतक?"[8]

इसी तरह माँ-बेटी, पिता-पुत्री, भाई-बहन आदि के संवादों में भी यौनजन्य मनोविकार देखने को मिलते हैं। नाटककार ने "द्रौपदी" में प्रेम और यौनजन्य मनोविकारों को व्यक्त करने के लिए निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग किया है जिससे इन पात्रों की यौनसंबंध विषयक स्थिति और गति व्यक्त होती है। जैसे- "ब्लाऊज के बटन", "थ्योरी", "प्रैक्टीकल", "वो चीज", "पाँच मिनिट का सवाल" इत्यादि।

इस नाटक की अंजना भी यौन मनोविकारों से पीडित है। वह एक अत्याधुनिका नारी के समान अपने बॉस से रतिज संबंध रखकर अधिक से अधिक भौतिक सुविधाएँ, अच्छे-अच्छे ओहदे पाना चाहती है। उसका प्रेम स्वार्थी है। इसी स्वार्थ की परिधि में अटककर वह यौनजन्य मनोविकारों से ग्रस्त होती है। अंजना का निम्नलिखित वक्तव्य दृष्टव्य है - "तुम कितने खुदगर्ज़ हो। तुम्हारे शनिवारों के लिए मैं इसी ज़िन्दगी से चिपकी रहूँ? तुम्हारी चार रातें मज़े में गुज़र सकें, इस लिए महीने के उन्नीस दिन मैं घुट-घुट कर जीती रहूँ?"[9] इस प्रकार नाटककार ने इस से अंजना की प्रेम तथा यौन विषयक मनोविकृति पर प्रकाश डाला है।

2. स्वप्न मनोविज्ञान

नाटककार सुरेंद्र वर्मा ने "छोटे सैयद बड़े सैयद" में स्वप्न मनोविज्ञान का प्रयोग किया है। इस्लामी निजाम की हैसियत से भारत में इस्लाम अपने कदम नहीं रख सकता है बल्कि उसे भारत की कौमों की ओर भी ध्यान देने की जरूरत है। यह बात अब्दुल्ला खाँ के माध्यम से बतायी है। मीरजुमला जब अब्दुल्ला खाँ की बात नहीं मानता है तब नाटककार ने अब्दुल्ला खाँ के मनस्थितिका बड़ा ही सुंदर चित्रण व्यक्त किया है।

अब्दुल्ला खाँ वास्तव में हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रयास करनेवाला एक प्रमुख व्यक्ति है लेकिन उसका ख्वाब जब टूटने को आता है तब वह मीरजुमला से कहता है – "आदमी को मंसब से नापने वाले बौनो! तुम मेरे ख्वाब की बुलंदी क्या नापोगे।... तुम्हारी निगाहों का आस्मान तो यहाँ है – तुम्हारी बुलंदी कहकशां ..."[10]

नाटककार सुरेंद्र वर्मा ने छोटे सैयद के रूप में हुसैन अली को प्रस्तुत किया। हुसैन अली एक स्वार्थी दगाबाज व्याक्ति है। उसका स्वप्न दिल्ली का बादशाह बनने का है। नाटक के दृश्य 23 में हुसैन अली और अब्दुल्ला खाँ के बीच जो वार्तालाप होता है उस में हुसैनअली अपना ख्वाब इसप्रकार प्रकट करता है – ... मेरे खून में एक नया वलवला है, मेरी शमशीर पर गिरफ्त दुगुनी मज़बूत...रात को यकायक मैं सोते-सोते जाग उठता हूँ, गोया कि यह क़ुव्वते नागहानी मुझसे बर्दाश्त नहीं होती...कि देखो, ये हैं वो हाथ, जो किसी भी माथे पर कोहेनूर सजा सकते हैं...बारहा मैं पैदा हुआ, एक अदना सिपाही का बेटा हिन्दुस्तान की तवारीख़ बना रहा है..."[11]

नाटककार सुरेंद्र वर्मा ने "छोटे सैयद बड़े सैयद" नाटक में रफ़ीउद्दर्जात और इनायत बानो के माध्यम से नवजात बादशाह जो उम्र में छोटा होता है लेकिन स्वप्न बड़ा रचता है, उसका मार्मिक चित्रण खींचा है। जब रफ़िउद्देर्जात को दिल्ली के सल्तनत पर बिठाया जाता है तब वह इमारतों का नक्शा तैयार करवाता है और अपने सल्तनत में इमारतें कैसी हो इसका ख्वाब रखता है। उसके ख्वाब में बादशाह बेगम और इनायत बानो हिस्सा लेती है। निम्नलिखित वार्तालाप द्रष्टव्य है –

"बादशाह बेगम : (नक्शा देखते हुए) हमारा ख़्याल है कि ये ऊपर वाले कँगूरे ज़्यादा बड़े हैं... और मशरिक़ की तरफ़ यह जो नक़्क़ाशी है न, पूरी तामीर की शख़्सियत से मेल नहीं खाती।

रफीउद्दर्जात : अगर दूसरी से लेकर पाँचवीं मंज़िल पर सामने की तरफ़ तीन-तीन दरीचे भी हों, तो कुछ खुलेपन का एहसास होगा।

इनायत बानो : और रंग भी सफ़ेद होना चाहिए-संगमरमर इस्तेमाल करके, ताकि असर सादगी और पाकीज़गी का हो।"[12]

नाटककार ने "एक दूनी एक" के दसवें दृश्य में स्वप्न मनोविज्ञान का खुलकर प्रयोग किया है। यहाँ आदमी और औरत अपनी मनोवृत्तियों के अनुसार सपने देखते हैं। औरत का सपना देखिये- "देखा कि समुंदर बाल्कनी तक आ गया है... एक के बाद लहरें दीवार से टकरा रही हैं. घर में पानी भर रहा है... मैं चीख़ कर कहती हूँ समुंदर से, यह तो गलत बात है। कुदरत का कायदा है कि तुम अपनी हद नहीं छोड़ सकते। फिर ऐसा क्यों?"[13] यहाँ नाटककार ने सागर पर आक्रमण करनेवाले व्यक्ति की बुराई को वाणी देने का प्रयत्न सपने के माध्यम से किया है। मनुष्य की बुराई देखकर सागर भी कभी-कभी अपनी मर्यादाओं को लाँघकर कानून तोडने की स्थिति में कैसे आ पहुंचा है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य यहाँ दिखाने का प्रयत्न किया है। आदमी का स्वप्न भी बड़ा ही दिलचस्प है। नाटककार ने मनुष्य संवेदनद्वारा अपना मनोरंजन कैसे करता है यह दिखाया है जिस बात के बारेमें हमारे मन में आकर्षण होता है उसी बात को सपने के माध्यम से देखकर खुद का समाधान कर लेता है। जैसे-

आदमी : "मैंने देखा कि पजामा, अचकन और सुनहरी टोपी पहने पच्चीस शहनाई बजाने वाले आगे-आगे चल रहे हैं। पीछे रंगबिरंगे सूटों और साड़ियों का झुण्ड है। बीच में सफ़ेद घोड़ा है, जिसके सवार का मुँह सेहरे से ढँका है।"[14] यहाँ दूसरों के हाथ पीले करनेवाला व्यक्ति स्वयं के हाथ पीले न होने के कारण अपनी अतृप्ति को अपने सपने के द्वारा अभिव्यक्ति दे देता है।

मनुष्य में अंधविश्वास होता है कि सपने में हम भविष्यवाणी सुन सकते हैं। हम सपने देखकर कई बुरे और प्रतिकूल अर्थ भी लगा लेते हैं। यहाँ की औरत व्यंग्यात्मक ढंग से एक सपना अपने आदमी को विशद कर रही है जैसे - "मैंने देखा कि तुम साइकिल पर जा रहे हो, सामने से तेज़ी से आती एक कार से टक्कर हुई और तुम्हारी टाँग टूट गयी।"[15] इस सपने में व्यंग्यात्मकता है। एक दूसरे की खिल्ली उडाने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

3. प्रभावजन्य मनोविज्ञान

मनुष्यपर परिवेश का प्रभाव अत्यंतिक तेज गति से छा जाता है। अपना परिवार, समाज, राजनीति, धर्मनीति, आदि का प्रभाव मनुष्य मात्रपर पड़े बिना नहीं रह पाता। परिणामस्वरूप मनुष्य अच्छे और बुरे सभी प्रभावों से प्रभावान्वित होते हैं। यौन संबंधों के रूप में प्रभावजन्य परिस्थिति बहुत बढ़िया मात्रा में उभर उठती है। एक की यौनविषयक हरकत की कल्पना से भी युवा-युवतियों पर इसका प्रभाव कम-अधिक मात्रा में दिखाई देता है। वास्तव में यह बात भारतीय संस्कृति में उपेक्षित मानी जाती है। परिवेशजन्य यौन मनोविज्ञान से युवक-युवतियाँ उध्वस्त हो जाते हैं, ऐसी हमारी धारणा है।

"आठवाँ सर्ग" नाटक में कालिदास और प्रियंगुमंजरी के विवाहोत्तर शयनकक्ष को और उनके सिकुड़ने पडे हुये बिस्तरे को देखने के बाद पति-पत्नी संबंधों का कल्पनाजन्य प्रभाव प्रियंवदा और

अनसूया पर पड जाता है जिससे ये दोनों युवतियाँ उन दोनों के संबंधों की कल्पना कर के यौन मनोविज्ञान से प्रभावित नजर आती है। "शयनगार में उमा-महादेव रति क्रीडा में एक दूसरे को पराजित करने को तुले हैं। इस प्रसंगपर काव्यगान आते ही धर्मगुरू काव्यपर अश्लीलता का आरोप लगाते हैं"[16] और 'कुमारसंभव के" "आठवाँ सर्ग" रचना का विरोध करते हैं। इसका कारण भी प्रभावजन्य मनोविज्ञान ही है। धर्माध्यक्षों के मतानुसार "आठवाँ सर्ग" में चित्रित शिव-पार्वती की रतिक्रीडा को पढ़कर समाज-जीवनपर बुरा प्रभाव पड़ जायेगा और पूरा समाज-जीवन ध्वस्त होगा। प्रियंगुमंजरी भी पति-पत्नी संबंधों में एक परदा चाहती है इसका कारण भी प्रभावजन्य मनोविज्ञान ही होगा। कारण उसे यह डर है कि इस उद्दाम रतिज संबंधों से समाज-जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ जायेगा।

मनुष्य जन्मजात विकृत नहीं होता। उसपर कभी-कभी प्रभावजन्य मनोविकार अपने आप हावी होते हैं। "द्रौपदी" नाटक में नाटककार ने मनमोहन की मानसिकता के प्रभाव से उसके परिवार के बच्चे भी किसप्रकार दुष्ट प्रवृत्तियों का अनुकरण करने लगते हैं, इस पर प्रकाश डाला है। मनमोहन और सुरेखा के निम्नलिखित वार्तालाप से यह बात स्पष्ट होती है -

'मनमोहन :"लड़का निहायत ही बेवकूफ़ है।

सुरेखा : क्यों?

मनमोहन : छह महीनों में सिर्फ़ ब्लाउज़ के बटनों तक पहुँच सका।

सुरेखा : तुम्हें शर्म नहीं आती? - इस तरह बोलते हो अपनी बेटी के लिए?

मनमोहन : वो मेरी बेटी नहीं है।"[17]

मनमोहन की पत्नी सुरेखा परिवर्तित समाज की हवा को पहचानने वाली नारी है अतः इस परिवर्तित समाज की बिगड़ी हुयी हवा अपने बालबच्चों पर असर न करे इसलिए वह प्रारंभ में सतर्कता दिखाती है। वह अपनी पुत्री को प्रारंभ में सावधानी बरतने के लिये कहती है। परंतु बाद में वह स्वयं परिवर्तित समाज के प्रभाव में आकर जल्द-ही-जल्द अपने को आधुनिकता के साँचे में ढालना चाहती है। वह अपनी पुत्री से कहती है कि वह उनके प्रेमी का साथ न छोड़े, जिससे उसकी शादी भी हो सके और आर्थिक बचत भी हो सके इस प्रभावजन्य मनोविकारों से ग्रस्त सुरेखा अपने बेटी को प्रेम राज्य के कई दाँव पेंच सिखाना चाहती है। वह उसे अपने प्रेमी की तरफ आकर्षित करने के कई मार्ग बताती है। इतना ही नहीं वह जो भी कुछ माँगेगा उसे राजीखुशी देने को कहती है। यहाँ द्रौपदी सदृश्य नारी सुरेखा परिवेशानुकूल प्रभावजन्य मनोविकारों से ग्रस्त दिखाई देती है।

आधुनिक समाज सेक्सपर आधारित देखने को मिलता है। ऐसे समाज के प्रभाव की कचोट में आकर आज का युवावर्ग पूर्ण रूप में बिगड़ चुका है। चरस, गांजा, एल.एस.डी. और अश्लील साहित्य पढ़ने में प्रभावजन्य रूचि दिखा रहा है। प्रस्तुत नाटक में अनिल-वर्षा, अलका-राजेश इसी युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि पात्र हैं, जो प्रभावजन्य मनोविकारों से पीडित हैं। मनमोहन के माध्यम से नाटककार ने एक

सुखी गृहस्थ को और उसकी गृहस्थी को प्रभावजन्य परिवेश के कारण विकृत दिखाकर पूर्ण बिखरा हुआ और अधःपतित दिखाया है। भौतिकता की लालसा, पर-स्त्री गमन, ऊँचे पदों की लालसा, भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति, कामुकता, स्वेच्छाचारिता आदि अनेक रूपों में प्रभावजन्य मनोविकारों की छाया देखने को मिलती है।

स्पष्ट है कि आधुनिक युग में उच्च वर्गीय परिवारों में भाई-बहन, माता-पिता, बाप-बेटी, माँ-बेटी के संबंधों में परिस्थितिजन्य गिरावट देखने को मिलती है। आज नाते-रिश्ते का पावित्र्य गिरने लगा है। इसका सबूत अलका, अनिल के संवादों में मिलता है। अलका का स्वच्छंद अभिसार मातपिता के संस्कारों की परिणति है।

"छोटे सैयद बड़े सैयद" नाटक में नाटककार ने दो सगे भाइयों की विरोधाभासात्मक मनोवृत्ति को चित्रित किया है, जिस में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का बड़ा हाथ है। हुसैन अली और हसन अली दोनों सगे भाई होकर भी उनके स्वभाव गुणों में बहुत कुछ अंतर महसूस होता है। हुसैन अली प्रगाढ इच्छाशक्ति से युक्त है वह बादशाह बनने का सपना संजोये रखता है फिर भी बादशाह नहीं बन पाता। बादशाह बनने का अपना अरमान वह अपने बड़े भाई अब्दुल्ला खाँ के सामने प्रकट करता है-"यहाँ बैठे हुए कितना फर्क सा लगता है ... सब कुछ कितना नीचा और छोटा ...। यह एहसास किसतरह आहिस्ता-आहिस्ता अंदर जज्ब होता जा रहा है... कैसी नामालूम सी सिहरन है, जो खुदी को नशीले हाथों सहला रही है ... हमें ढाल की क्या जरूरत ... हम क्यों न खुद ...?"[18]

हुसैन अली और अब्दुल्ला खाँ का द्वंद्व देखने योग्य है। दोनों भाइयों में आशंकायुक्त वातावरण और द्वंद्वात्मकता देखने को मिलती है। दोनों भाइयों के मतभेद इस द्वंद्वात्मकता को और भी जिंदा बना देते है। ये दोनों भाई-भाई होकर भी एक दूसरे के साथ दुश्मन जैसा व्यवहार करते हैं। दिल्ली के एक सुनसान खंडहर में दोनों भाइयों की अचानक भेट हो जाती है। तब हुसैन अली अपने बड़े भाई अब्दुल्ला खाँ से कहता है "रतनचंद की हवेली के पीछे मिली नूरेइलाही की बेजुबान लाश ने मुझे यहाँ का पता दिया था... भाईजान!"[19] इन भाइयों का संघर्ष यहाँ तक पहुँच पाता है कि हैदरबेग के द्वारा हुसैन अली की हत्या[20] हो जाती है।

४. <u>असंगत जीवन से उद्भुत मनोविज्ञान</u>

आज का मानव-जीवन असंगत दिखाई पडता है। संगति की तलाश में असंगति ही प्राप्त होती है और इसी कारण मानव की मनोवैज्ञानिक स्थिति भी असंगत बन जाती है। सुरेंद्र वर्मा लिखित "द्रौपदी" में असंगत जीवन से उद्भुत मनोविकारों पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत नाटक के पात्र सुरेखा में यह असंगतता देखने को मिलती है। वह अपनी बेटी अलका को उसके प्रेमी को "राजी खुशी देती जा" ऐसा कहती है, और दूसरी तरफ से यौन संबंधों से सावधान रहने का इशारा भी देती है।[21] उसकी

यह विसंगति उसके मन में स्थित मनोविकारों से उत्पन्न हुई है।

सुरेखा का पूरा चरित्र आधुनिक पारिवारिक विसंगतियों का एक यथार्थ हल ढूँढने का प्रयत्न करता है। सुरेखा के पति मनमोहन भी असंगत जीवन से उद्‌भुत मनोविकारों से ग्रस्त है। द्रौपदी नाटक में प्रारंभ में प्रथम अंक में सुरेखा का एकालाप असंगत जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करता है – " ओह, क्षमा कीजिएगा–मुझे ध्यान ही नहीं रहा कि आप लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं अपने आप में ही इतनी उलझी हुई थी कि —— हाँ, तो पहचान लीजिए मुझे। मैं हूँ इस नाटक की नायिका —— नाम मेरा सुरेखा है। निकट के लोगों ने उसे रिखी कर दिया है। आप लोग भी चाहें, तो कह सकते हैं यही —— मुझे कोई आपत्ति नहीं। ××××

मेरे ब्याह को बहुत वर्ष हो गये हैं। तब मैं एक नासमझ सी लड़की थी और गिनी–चुनी चार–छह वस्तुओं से मैं ने अपनी गृहस्थी बसायी थी। अब बहुत कुछ है मेरे घर में लेकिन बहुत कुछ नहीं भी है। उसी को पाने की दौड़ चल रही है।"[22]

मनमोहन एक गृहस्थ होकर भी अपनी पत्नी को छोडकर अंजना, रंजना, वंदना के सान्निध्य में सुख पाता है, अर्थात पर–स्त्री गमन असंगत जीवन से उत्पन्न एक मनोविकार है, जिसका शिकार मनमोहन बन बैठा है। अंजना, रंजना, वंदना – ये स्त्रियाँ भी अपनी गृहस्थी में रमने की बजाय मनोविकृत बनकर असंगत जीवन बिता रही है। नाटककार ने इन स्त्री पात्रों के माध्यम से आधुनिक नारियों में स्थित असंगति और मनोविकृति स्पष्ट की है। अलका–राजेश, अनिल–वर्षा विवाहपूर्व प्रेमसंबंधों को प्रस्थापित करके मनोविकार ग्रस्त असंगत जीवनयापन कर रहे हैं। यहाँ सारे पात्र जीवन की असंगति के कारण मनोविकृत लगते हैं। नाटककार ने इन पात्रों के माध्यम से असंगत जीवन से उद्‌भुत मनोविकारों का चित्रण किया है।

"एक दूनी एक" में सुरेंद्र वर्मा ने महानगरीय जीवन में आदमी और औरत के मनोविज्ञान पर प्रकाश डाला है। महानगरीय जीवन में स्थित स्त्री–पुरूष संबंधों से उत्पन्न मानसिकता, घुटनशीलता, ग्लानि, अतृप्ति, आदि का मनोविज्ञान के धरातल पर सूक्ष्मता से चित्रण किया है। वैवाहिक बंधन में अटककर भी एक दूसरे से न चाहनेवाले पति–पत्नी के जीवन की तनाव ग्रस्तता दिखाकर पारिवारिक जीवन का बिखराव स्पष्ट किया है। सुरेंद्र वर्मा ने स्त्री–पुरूष संबंधों की दुर्बलताओं को दिखाकर उनकी रूग्ण मानसिकता को दर्शकों के सामने रखा है। इस नाटक में आदमी और औरत के माध्यम से महानगरीय जीवन का अजनबीपन, बिखराव, टूटन आदि के साथ मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर नये–नये प्रयोग किये हैं।

महानगरीय जीवन में स्थित स्वार्थांधता, यांत्रिकता आदि के कारण मनुष्य के मन में उलझनें पैदा होती हैं और मानवी मन मानसिक रूग्णता की स्थितितक पहुँच जाता है। आज महानगरों में

बिगड़ी हुयी मानसिकता को आत्मशांति में परिवर्तित करने के लिये अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं। ऐसे आत्मशांतिपरक प्रयोगों पर व्यंग्य करते हुये नाटककार ने आदमी के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि - "कल जाइए रेसकोर्स और अनारकली पर दाव लगा दीजिए। लिली से उसका खुशबू का रिश्ता भी बनता है... और गीता बराबर जेब में रखिए... दो रेसों के बीच में बियर की चुस्की के साथ पन्ने पलटते रहिए... इस असार संसार में खून और मन का रिश्ता कुछ नहीं बंधु और मित्र कोई नहीं।"[23] इससे यह लक्षित होता है कि आज महानगरीय जीवन में आत्मशांति के लिये मनुष्य विविध प्रयत्न करते हैं, जो असंगत लगते हैं। रेसकोर्स, गीतापठण आदि रास्ते आत्मशांति के पथप्रदर्शन के लिये उपयोगी नहीं बन बैठते। अतः लगता है कि शांति की तलाश एक मृगजल ही है।

शहरी जीवन में व्यस्तता बढ़ती जा रही है।कार्यभार के पैमाने में समय की अत्यंतिक कमी महसूस होती है।इस हालत में ये लोग एक दूसरे से संबंध स्थापित करने के लिये टेलिफोन पर बातें करते हैं। इन बातों से इन लोगों की विसंगत मानसिकता हमारे सामने प्रस्तुत होती है। नाटककार ने आदमी और औरत की विसंगतियों को चित्रित करते हुये लिखा है, "आदमी रोता है, गालियाँ देता है, कपडे फाड़ता है और औरत हँसती है, गाती है, सपने देखती है।"[24] नाटककार ने यहाँ आदमी और औरत की मानसिकता को दिखाकर असंगत जीवन की एक झाँकी पेश की है। इसमें नाटककार की प्रयोगधर्मिता लक्षित होती है। आज महानगरीय जीवन में ऐसे जीवनयापन करनेवाले अनेक स्त्री-पुरूष दिखाई देते हैं।

नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में असंगत नारी मनोविज्ञान पर प्रकाश डाला है। प्रेम की असफलता के कारण वह उसे "रिगल थिएटर के फिल्मों से जरूर घृणा पैदा हुयी है;इतनाही नहीं,जिस सीटपर वह अपने प्रेमी के साथ फिल्म देखती थी उस सीटपर वह बैठना नहीं चाहती, पूना जानेवाली डेक्कन क्वीन से मुसाफिरी करना नहीं चाहती, बोरिवली का पार्क और हेमिंग्वे की किताबों से उसे नफरत हो गयी है। [25]यहाँ नाटककार ने नारी जीवन की विसंगति को मनोवैज्ञानिक धरातल पर स्पष्ट किया है। औरत के असंगत जीवन की झाँकी देखने लायक है - "मैं सुबह और शाम, दोपहर और रात-आठों पहर, हर घड़ी तुम्हें कोसूँगी, पानी पी-पीकर काली गालियाँ दूँगी। तुम्हें पल-भर के लिए भी चैन नसीब न हो।"[26]

इस नाटक में नाटककार ने आदमी के माध्यम से उसके विसंगत जीवन पर गहराई से सोचा है। वह एक दार्शनिक की भांति अपने विचार एक तरफ प्रस्तुत करता है तो दूसरी तरफ खुद को दुनिया का सबसे बड़ा दुःखी आदमी मानता है।वह अपनी पत्नी इंदुमती के साथ चौदह वर्षोंका वनवास भुगत चुका है। झगडालू पत्नी के कारण विदग्ध बन बैठता है, वह कहता है - "मुझे भारत-रत्न, मैगसैसे और नोबुल पुरस्कार, युनाइटिड नेशंस का शांति पुरस्कार-- सब मिलने चाहिए। ××××× स्त्री-पुरूष के संबंधों की यह कैसी क्रूर नियति है!"[27] यहाँ वह प्रारंभ में पत्नी के प्रति घृणा दिखाकर

उसकी हत्या करने पर आमदा होता है। इतनाही नहीं, उस पर मिट्टी का तेल छिड़काकर और चूहे मारने की दवा चाय में मिलाकर उसे मिटाना चाहता है परंतु अंत में अपने बच्चे की याद आते ही आधुनिक स्त्री-पुरूषों की नीति पर पसीज जाता है और हत्या का निर्णय छोड़ देता है। यहाँ नाटककार ने आदमी की विसंगत मानसिकता पर प्रकाश डाला है।

नाटककार ने आदमी और औरत के माध्यम से स्त्री-पुरूष संबंध की विसंगतियाँ दिखायी हैं। यहाँ असंगत जीवन के माध्यम से आधुनिक मनुष्य में पैदा होनेवाली रूग्ण मानसिकता, निराशा, संत्रस्तता, आत्मनिर्वासन और मनोविकृतियाँ एवं टूटनशीलता को दर्शकों के सामने रखा है। यहाँ नाटककार की असंगत जीवन से उद्‌भुत मनोवैज्ञानिक प्रयोगधर्मिता का परिचय मिलता है।

5. खण्डित व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम

स्वातंत्र्योत्तर साहित्यकारों की एक विशेष प्रवृत्ति यह रही है कि उन्होंने अपने साहित्य में मनोविज्ञान के धरातल पर पात्रों के खण्डित या विभाजित व्यक्तित्व को चित्रित किया है। स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों में मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेंद्र वर्मा आदि नाटककार ने अपने नाटकों में पात्र और चरित्रचित्रण में बड़ी मात्रा में पात्रों के खण्डित व्यक्तित्व को अंकित किया है। खण्डित व्यक्तित्व अंकन आज के नाटकों की एक विशिष्ट उपलब्धि है। एक विशेष नया प्रयोग है।

प्रवरसेन - सुरेंद्र वर्मा के "सेतुबंध" में चित्रांकित पात्र "प्रवरसेन" के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को देखा जा सकता है। पात्र ऐतिहासिक है परंतु इस पात्र के इर्दगिर्द स्थित समस्या के कारण अति सामान्य लगता है। प्रवरसेन अटाव नरेश रूद्रसेन और प्रभावती का बेटा है। वह अपनी माँ के विवाहपूर्व लैंगसंबंधों से परिचित होकर अपने आप को एक हीन ग्रन्थि से त्रस्त कर बैठा है। उसके मन में अपने पिता के अस्तित्व के प्रति साशंकता निर्माण होती है। इसलिये वह अपनी माँ के संदर्भ में एक प्रेमिका का मनोविश्लेषण स्पष्ट करते हुये कहता है - "कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जिनके बाहरी रूप से मालूम नहीं पडता कि उन के अंदर कैसा रक्तपात है। सांसारिक धरातल पर वे सबकुछ उसी ढंग से करते हैं, जैसे एक औसत आदमी करता है, लेकिन भीतर ही भीतर वे एक समानान्तर जीवन जीते हैं।"[28] इससे वह अंदाजा लगाता है कि कालिदास की मृत्यु के पश्चात माँ का आत्यंतिक विचलित हो जाना, रामगिरि पर जाकर रहना, वहाँ शांति पाना आदि से कालिदास से माँ के संबंध आत्यंतिक दृढ होंगे। इससे उसके मन में हीन ग्रंथि का निर्माण और भी बढ़ने लगता है। उसे अपने बचपन के दिन याद आते हैं और वह अनुभूतियों के आधार पर अपनी माँ का बहुत म्लान और उदास चित्र देखने लगता है। वह उसी को प्यासा चातक और अश्रूवर्षा मानने लगता है। उन्होंने जान लिया है कि माँ का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था। वह यह भी अंदाजा लगाता है कि शायद पिताजी माँ के लिए अनुकूल नहीं होंगे। इसके बाद उसकी विचारशृंखला बल

पकडने लगती है। तर्क-वितर्क का जाल उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व पैदा करता है। वह सोचता है कि व्याह के बाद माँ कभी उज्जयिनी नहीं गयी होगी, अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर माँ ने आमोद-प्रमोद की बातें नहीं सोची होंगी। महारानी कुबेर की रोगग्रस्त स्थिति में माँ ने दुःख प्रकट नहीं किया होगा। इस आशंकाओं के कारण उसका अन्तर्द्वन्द्व खूब बढ़ने लगता है और वह संत्रस्त होता है। माँ का उज्जयिनी न जाना, महाकवि का कभी भी नंदीवर्धन न आना, पिताजी के देहांत के पश्चात् भी उनका कभी हमारे यहाँ न आना, सेतुबंध के मंथन के समय, मेरे राज्याभिषेक के समय, मेरे विवाह के समय महाकवि कालिदास का कभी न आना- इन सभी घटनाओं से उसका अन्तर्द्वन्द्व बढ़ने लगता है जिससे उसकी मानसिकता डावाडोल होने लगती है।

कालिदास द्वारा अपनी माँ को मेघदूत की पाण्डु लिपि देना, इस पाण्डु लिपि को माँ के द्वारा अपने शयनकक्ष में काष्टपेटिका और रत्नमंजूषा में रखना, यह पाण्डुलिपि परिवार के किसी भी सदस्य को न दिखाना इन सारी घटनाओं के कारण प्रवरसेन अधिक आकुल होता है। उसकी मानसिकता रूग्ण बनने लगती है। प्रवरसेन को जब पता चलता है कि अपनी माँ प्रभावती के प्रेमसंबंध कालिदास से जुड़े हुए थे तब उसे अपने अस्तित्व के प्रति शंका उत्पन्न होती है और उसे लगता है कि वह अपने पिता से निर्मित न होकर कालिदास से उत्पन्न हो गया होगा। उसे यह भी लगता है कि उसका महाकाव्य सेतुबंध वास्तव में प्रशंसनीय रचना नहीं होगी, मैं कालिदास की प्रेयसी का पुत्र होने के कारण शायद इस रचना को ऊँचा माना गया होगा, शासन मेरी मुठ्ठी में होने के कारण और सारे साहित्यिक आश्रित होने के कारण यह रचना श्रेष्ठ ठहरायी होगी। इन सभी आशंकाओं के कारण प्रवरसेन में टूटनशीलता आने लगती है। उसकी यह टूटनशीलता निम्नलिखित कथन में स्पष्ट होती है - "तब फिर मैंने क्या पाया? मेरी व्यक्तिगत उपलब्धि क्या है? .... अगर कालिदास को स्वीकृति भी सच्ची नहीं है, तब फिर मैं भी अपने पिता की तरह एक औसत व्यक्ति हूँ.... अधिक तर सेतुओं के समान मेरा सेतु भी आधा या चौथाई या तिहाई है -- कीचड़ और काई-सना.. घुन और जंग लगा.... भग्न....जर्जर.... कंकालवत्..।"[29]

यहाँ प्रवरसेन की मानसिकता, संत्रस्तता, अन्तर्द्वन्द्व नाटक के प्राण हैं। प्रवरसेन की मानसिकता को केंद्र में रखकर यह नाटक लिखा गया है। प्रवरसेन के माध्यम से "अस्मिता की खोज में नाटक के अंत में सार्थक अस्तित्व की तलाश की गयी है।"[30] स्पष्ट है कि "सेतुबंध" के माध्यम से आज के व्यक्ति के मन की बेचैनी तथा छटपटाहट दिखायी है। यहाँ अस्तित्ववादी जीवन दर्शन की झलक प्रवरसेन के बहाने देखने को मिलती है। प्रवरसेन के बारे में डॉ. सुरेशचंद्र शुक्ल के विचार समीचीन है - "वह (प्रवरसेन) अपने पिता की तरह एक भग्न, जर्जर, कंकालवत, औसत व्यक्ति बनकर नहीं जीना चाहता नाटककार ने उसके अन्तर्मन के द्वंद्व को बड़ी सफलतासे उभारा है।"[31]

प्रभावती – प्रभावती, अपने पिता चंद्रगुप्त की हठवादिता के कारण अपने विवाहपूर्व प्रेमी कालिदास से विवाह नहीं कर सकी। असफल प्रेम की ग्रंथि ने प्रभावती को मनोरूग्ण बनाया है। परिणामस्वरूप आजीवन वह कालिदास के प्रेम को अपने हृदय में संजोयी रहती है। उसका विवाह उसकी इच्छा के खिलाफ वाकाटक नरेश रूद्रसेन से होता है। प्रभावती ने रूद्रसेन को पति तो जरूर माना है परंतु उसके मन ने इस थोपे हुये पतित्व को स्वीकार नहीं किया है। अतः विधिवत पति उसे पर-पुरूष की भांति और प्रेमी पर-पुरूष पति की भांति लगता है और इसी के कारण उसका पूरा जीवन अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त हो चुका है। इस अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट करते हुये वह कहती है – "कौन समझेगा कि मेरी भावना आजतक कुमारी है .... मैं माँ बनी हूँ, लेकिन पत्नी नहीं।"[32] वह पतिद्वारा शारीरिक संबंध को एक बलात्कार मानती है।

प्रभावती अपने पुत्र प्रवरसेन से सारी घटित घटनाएँ स्पष्ट रूप में चित्रित करती है। वह अपने मातृत्व को एक विवशता मानती है, वैवाहिक मर्यादा को लाँघकर पति के होते हुए भी परपुरूष को चाहती है। वह अपने पति से असंतुष्ट होकर पूरा जीवन नीरस पाती है। उसकी असंतुष्टता विद्रोह में परिवर्तित होकर वह अपने पिता की प्रवंचना, प्रताडना करती है वह कहती है – "ब्याह की वेदी पर मेरा बलिदान और नीचे सुनहरे अक्षरों में उपाधि – 'प्रभावतीदमनकर्ता।"[33] यहाँ उसकी मानसिकता विद्रोह का रूप धारण करती है। जिससे उसका पूरा मानस हिंदोलित हो उठा है। प्रभावती अपने पति को बहुत कम महत्व देती हुयी दिखायी देती है। वह अपने विवाह को राजनैतिक विवाह मानती है। ऐसे विवाह में भावनाओं का संबंध नहीं रहता। वह यह भी मान पाती है कि वह माँ तो बनी है लेकिन पत्नी नहीं। यहाँ उसकी दबी हुअी मन की स्थिति लक्षित होती है।

अपने पूर्व प्रेमी की छाया अपने बेटे में पाती है जिससे वह संतुष्ट होना चाहती है। अपने प्रेमी के द्वारा दी हुई मेघदूत की पाण्डुलिपि को अपने जीवन का सबकुछ मानकर उस पाण्डुलिपि के सान्निध्य में रहकर अपने पूर्व प्रेमी के सान्निध्य का अनुभव कर लेती है। केवल इस प्रेम के सौगात को मन में आजीवन रखती है। डॉ. सुंदरलाल कथुरिया ने "सेतुबंध" में नारी के मनोविज्ञान को संबोधित करते हुये लिखा है – "इस मनोवैज्ञानिक नाटक में सुरेंद्र वर्मा ने नारी जीवन की विवशता, परवशता, दैन्य और नारी मनोविज्ञान का अच्छा उद्घाटन किया है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता।"[34]

इस नाटक से यह लगता है कि यहाँ आरोपित पति-पत्नी के लिये पति न होकर परपुरूष ही है। ऐसे पति को वह नैतिक, सामाजिक मूल्यों के कारण बरदाश्त तो जरूर करती है फिर भी मन से कभी स्वीकार नहीं करती। प्रभावती और प्रवरसेन का मानसिक तनाव, उनकी छटपटाहट, संत्रस्तता को मनोवैज्ञानिक धरातल पर नाटककार ने रखकर मनोविज्ञान की दृष्टि से नया प्रयोग किया है।

कालिदास – नाटककार सुरेंद्र वर्मा ने "आठवाँ सर्ग" नाटक में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर कालिदास के मनोविज्ञान को चित्रांकित कर के उसके खण्डित व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को दर्शकों के

सामने रखा है। कालिदास ने "कुमारसंभव" के सात सर्गों को पूरा करके आठवें सर्ग में शिव-पार्वती की प्रणय लीलाओं को पति-पत्नी के रति रहस्य के माध्यम से चित्रित किया। परंतु इसपर धर्माध्यक्षों ने भयंकर आक्षेप लेकर कालिदास के सम्मान समारोह में बाधा डाली। फलस्वरूप कालिदास को सम्मान की अपेक्षा अपमान ही अधिक बरदाश्त करना पडा। जिससे एक प्रतिभावंत कालिदास के व्यक्तित्व में खण्डित अवस्था पैदा हो चुकी थी। इस अपमान के कारण कालिदास की बिगड़ी हुयी मानसिकता के चढ़ाव-उतारों को नाटककार ने सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। कालिदास के मन में अहंकारी प्रवृत्तिका निर्माण हो जाता है जिससे वह कुण्ठाग्रस्त बनकर अपने अहंभाव को अधिक प्रश्रय देता है। अपने अपमान के कारण उसके मन में दुःखद कारूण्य की स्थिति का निर्माण हो जाना स्वाभाविक ही है। फिर भी इस दुःखद स्थिति में भागना नहीं चाहता। इस हालत में वह "आषाढ का एक दिन" का कालिदास नहीं बनना चाहता। वह परिस्थिति के खिलाफ संघर्ष करने के लिये आमदा हो जाता है।उसके मन में प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होती है। इस प्रतिशोध को वह "अभिज्ञान शाकुंतल" की स्वर्णजयंती के अवसर पर आयोजित किये हुये सम्मान समारोह का बहिष्कार करता है। यहाँ कालिदास की प्रतिशोध की मानसिकता में उसके व्यक्तित्व को पूर्ण रूप में विखण्डित कर दिया है।

आठवाँ सर्ग की अश्लीलता पर गौर करने के लिये धर्माध्यक्ष द्वारा न्याय समिति गठन करने की बात कही जाती है। न्यायसमिति के सदस्यों में संपन्न व्यवसायी दिवाकर दत्त, आयुर्वेदाचार्य और न्यायाधीश हैं। रचनाकार कालिदास आपत्ति उठाता है कि क्या न्यायसमिति के सदस्यों में काव्यशास्त्रीय अध्ययन, परिष्कृत सौंदर्यबोध, भावप्रवण संवेदनशील सूक्ष्म दृष्टि होगी?[35] इसप्रकार सुरेंद्र वर्मा ने लेखक की रचनाधर्मिता, उसके व्यक्तित्व अहं एवं गौरव को प्रतिष्ठापित किया है।

मदनोत्सव के दिन कालिदास का होनेवाला अपमान, कुमारसंभव के रतिज संबंधों के वर्णन के परिणामस्वरूप धर्माध्यक्षों की ओर से उसका किया जानेवाला विरोध आदि घटनाएँ कालिदास की मानसिकता को हिंदोलित किये बिना नहीं रह पातीं। स्वाभिमान के ठोकरों ने उसे बदला चुकाने के लिये प्रेरित किया है। अंत में धर्माध्यक्षों के द्वारा प्रस्तुत किया गया क्षमायाचना का प्रस्ताव वह ठुकरा देता है। "कुमारसंभव" के आठवाँ सर्ग पूरा न करने के कारण कालिदास की मानसिकता संत्रास्त और खण्डित हो जाती है। वह कहता है - "मैं विष खा लूँगा, विष ... डूब मरूँगा शिप्रा में लकिन किसी भी मूल्य पर...।"[36] इस नाटक में कालिदास की चरित्रगत विविधता और जटिलता दिखाई है। कालिदास के आंतरिक द्वंद्व ने कालिदास को खण्डित बनाया है। "कुसुमादपि कोमलानि वज्रादपि कठोरानि" इस उक्ति के अनुसार कालिदास की मनोवैज्ञानिकता कालिदास के व्यक्तित्व को संपन्न बनाती है।

<u>कर्पिजल</u> - "नायक खलनायक विदूषक" नाटक में कर्पिजल की मानसिक हलचल को चित्रित करने में नाटककार पूर्ण रूप में सफल हुआ है। यहाँ राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करनेवाले एक विदूषक की मानसिकता चित्रित की है। विदूषक कर्पिजल जो अपनी एक ही विदूषक की भूमिका से ऊब गया है

उसकी यह ऊबकायी उसके मानस के परदे खोलने में सक्षम है। वह एक ही भूमिका न करके जीवन के नये-नये अनुभवों को जुटाने के लिये अलग-अलग भूमिकाएँ अदा करना चाहता है। वह कभी-कभी नायक की तो कभी-कभी खलनायक की भूमिका करने पर उतारू हो जाता है। उसमें आत्माभिव्यक्ति और आत्मान्वेषण की प्रवृत्ति कम लगती है। इतना होकर भी वह अपने जीवन के सुनहले सपने संजोया रहता है और सफल अभिनेता बनना चाहता है। विदूषक की भूमिका अब उसे पसंद नहीं आती। वह कुण्ठित होता है और अपनी मनोदशा सूत्रधार के सामने प्रकट करता है - "क्या पिछले छह मासों में मैं आप से लगातार यह प्रार्थना नहीं करता आ रहा हूँ कि अब विदूषक की भूमिका मैं नहीं करना चाहता?"[37] सपनों की पलकों में खोया हुआ मनुष्य कभी भी संतोष नहीं पाता। वह केवल सपने संजोये रहता है और प्रतिकूल परिस्थिति उसके सपनों को तार-तार कर देती है। इससे वह विवश होता है, मजबूर होता है, आत्मविश्वास खोता है और निराशा की गर्त में धँस जाता है। यहाँ कपिंजल की यही स्थिति होती है।

दुनिया का मनोरंजन करनेवाला यह विदूषक यथार्थ से टकराकर नष्ट होने की स्थिति को प्राप्त करता है। उसमें मानवीय विवशता के साथ-साथ स्वतंत्र अस्तित्व का एक बलशाली प्रवाह पैदा होता है। परिणामतः वह विदूषक आत्माभिव्यक्ति का पूजारी बनकर अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिये दबावजन्य परिस्थिति के साथ संघर्ष करना चाहता है। इस संघर्ष में निराशा, विवशता, आत्माभिव्यक्ति और उसमें स्व-अस्तित्व के प्रति स्वाभिमान पैदा होता है। इस टकराहट में ऊबकायी और नीरसता की स्थितियाँ भी उत्पन्न होती हैं। इस में कपिंजल की पीडा दुःखद स्थितियाँ स्पष्ट होती है। सत्यप्रकाश मिश्र कपिंजल की अवस्था की सटीक व्याख्या इन शब्दों में करते हैं कि "विदूषक का सारा विद्रोह, सारी ओजस्विता धीरे-धीरे पूरी पीढ़ी से होते हुए एक संस्कृति का पर्याय बनकर विक्षाता और छटपटाहट से होते हुए नितांत वर्तमान का पर्याय बन जाता है।"[38]

इस नाटक में नायक, खलनायक, विदूषक एक ही व्यक्तित्व के तीन पक्ष है और परिस्थितियों के परिवर्तन से हर व्यक्ति में इसके दर्शन होते है। यहाँ नाटककार ने कपिंजल के माध्यम से कलाकार की आत्माभिव्यक्ति और स्वतंत्रता को मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्रित किया है। यहाँ कपिंजल के हृदय की छटपटाहट, उबकायी, निराशा, पीडा आदि को दिखाया है। नाटककार ने यहाँ मनुष्य की इच्छाओं को जीवन का नियामक नहीं माना है बल्कि व्यक्ति के विभिन्न पक्षों के लिये परिवेश और परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराया है।

<u>शीलवती</u> - "सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" नाटक में नाटककार ने शीलवती और ओक्काक के खण्डित व्यक्तित्व को बड़ी ही मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। रानी शीलवती की शादी एक ऐसे नपुंसक राजा से हुई जो संतान तो दूर रानी को शारीरिक सुख देने में भी असमर्थ है शीलवती ओक्काक के नपुंसकत्व के कारण अपनी यौन कुण्ठा को बढ़ा रही है जिससे उसकी मनःस्थिति दोलायमान

हो रही है। भारतीय स्त्री संस्कृति के आदर्श को यापन करनेवाली यह नारी यौनाभिलाषा को कुण्ठित बनाना चाहती है। परंतु अमात्य परिषाद् के निर्णय के बाद उपपति के रूप में किसी परपुरूष को चुनने की नौबत जब उसपर आती है तब उसका मानस और भी आंदोलित होता है। नियोग पध्दति के लिये वह प्रारंभ में विरोध करती है। परंतु अमात्य-परिषाद् के समझाने के बाद वह करूण स्वर में कहती है, "मैं तुम्हारे सामने कैसे आ सकती थी? ...मुझे अपने आप को तैयार करना था... सारे संस्कारों के जाल छिन्न-भिन्न कर के, मूल्यों और मर्यादाओं को तोड़ कर, अपना पूरा मनोबल इकट्ठा करके मुझे आज की इस घड़ी तक पहुँचना था ... उसके लिए दूरी आवश्यक थी, अनिवार्य थी...।"[39] यहाँ शीलवती के अन्तर्द्वन्द्व के दर्शन होते हैं। अत:पुर की नारी जिसे कविजन "असूर्यस्पर्श्या" कहते हैं, वही हाथों में जयमाला लेकर राज्यप्रांगण में उतरेगी और एक रात के लिए किसी पुरूष के साथ चली जायेगी, जिसे उसने कभी देखा नहीं और उसे अपना कौमार्य समर्पित कर देगी।वह ओक्काक के सम्मुख अपने मन की इसी विवशता को प्रकट करते हुए कहती है – "तुम यहाँ सारी रात जागोगे, मैं वहाँ सारी रात जागूँगी। ... वही अपमान और लज्जा और ग्लानि... वही चिंता और घुटन और घबराहट...!"[40]

शीलवती का परिवर्तित मनोविज्ञान यहाँ देखने को मिलता है। शीलवती की मजबूरी, लाचारी और विवशता निम्नलिखित संवादों में दिखायी देती है –

प्रतोष : तुम यहाँ जैसी आयी हो, बिल्कुल वैसी ही वापस जाओ।

शीलवती : अर्थात्?

प्रतोष : मैं तुम्हारा स्पर्श तक न करूँ।

शीलवती : नहीं ... तुम मुझे इतना कठोर दंड नहीं दे सकते, मेरे साथ इतना बड़ा अन्याय नहीं कर सकते ...।"[41]

प्रत्यक्ष आर्यप्रतोष के साथ शरीर संबंध आता है तब वह इतनी संवेदनशील बनती है कि उसका परंपरागत नारी आदर्श ढ़ल जाता है और वह मातृत्व की अपेक्षा रतिज सुख में अधिक रस लेती है। शरीर संबंध में उसका कौतूहल बढ़ जाता है और वह कहीं चान्स चाहती है। यहाँ शीनवती का तनाव, अनुभूति बौध्दिकता के बलपर रचनात्मक स्थिति तक जा पहुँचता है।

<u>ओक्काक</u> – ओक्काक के नपुंसक होने के कारण ओक्काक की मानसिक दशा रूग्ण मनोवैज्ञानिकता का परिचय देती है। ओक्काक के शब्दों में – "हाँ,हाँ... पाप है सब कुछ ... मुझसे बात करना ... मेरे साथ रहना... मेरे साथ सोना ...!"[42] इससे नपुंसक होने की मनोवैज्ञानिक संवेदना दर्शकों को देखने को मिलती है। ओक्काक का अन्तर्द्वन्द्व व्यक्त करने के लिये मदिरापान का रंगप्रतीक बार-बार प्रयुक्त होता है। मदिराकोष्ठ तक जाना, चषक भरना और घूँट-घूँट पीना[43] अव्यवस्थित मन:स्थिति को उभारता है।

अपनी नपुंसकता की कारण-मीमांसा को स्पष्ट करते हुये वह अपने मन के मैल को दर्शकों के सामने रखता है – उदा. "बचपन में अनाथ हो जाना,... किसी से घुलमिल न पाना... बहुत अकेला हो जाना... हमेशा का अंतर्मुख, हमेशा का निर्णयदुर्बल, हमेशा का अनिश्चयी... बहुत चुप, बहुत संवेदनशील, बहुत भीरू... हर अन्याय, हर अपमान को चुपचाप पी लेना ... आत्मविश्वास की कमी, स्वभाव का ठंडापन, मन की अस्थिरता...।"[44] अपने नपुंसकत्व पर खीझ व्यक्त करते हुये वह कहता है – बेकार हुआ था मेरा नामकरण संस्कार... बेकार है मेरे नाम की राजमुद्रा... बेकार होते हैं मेरे हस्ताक्षर – शिलालेखों पर, ताम्रपट्टों पर, राजादेशों पर ... संज्ञा नहीं हूँ मैं! ... विशेषण हूँ, विशेषण!"[45] ओक्काक की पीडा, छटपटाहट, टूटन, मन की रिक्तता, खीझ, ग्लानि आदि उसके संवादों और क्रिया-कलापों में सजीव हो उठी हैं। नाटककार ने ओक्काक को जीवन्त और स्वाभाविक बनाने के लिये मनोविज्ञान का कलात्मक उपयोग किया है।

अमात्य-परिषद् के निर्णय के अनुसार उपपति के रूप में कौन चुना गया है इसे जानने के लिये ओक्काक आकुल है। वह अपनी मन की अकुलाहट को आतुरता में ढालकर कहता है – "कौन है... कौन है वह?"[46] अपनी पत्नी का नियोग के लिये तैयार हो जाना ओक्काक की मनोदशा अधिक तीव्र करती है जिससे उसका व्यक्तित्व पूर्णतः खण्डित होता है वह तड़पते हुए कहता है – "... जीवन बहुत निर्लज्ज है।... होने से पहले आदमी कितना सोचता है, कितना तड़पता है... कि ऐसा कैसे होगा, क्यों कर होगा ... मैं सह नहीं पाऊँगा, मैं टूट जाऊँगा, चूर-चूर हो जाऊँगा... और फिर उठ खड़ा होता है, चाबी के खिलौने के समान ...।"[47] आधुनिक जीवन की विशेषता यह है कि आज का मानव टूटा हुआ है। उसका व्यक्तित्व खण्डित हुआ है। नपुंसक ओक्काक की व्याकुलता, आकुलता, छटपटाहट आदि नाटककार ने खण्डित व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में अंकित की है, जो नाटककार की प्रयोगधर्मिता की एक उपलब्धि है।

शीलवती को उपपति के रूप में आर्यप्रतोष के मिलने के बाद ओक्काक की नींद हराम होती है। अपनी मनस्थिति का वर्णन करते समय महत्तरिका से कहता है – "नींद? ... महत्तरिका! आज की रात तो मुझे मृत्यु भी नहीं आयेगी।"[48] यहाँ उसका अकेलापन, संत्रास देखने को मिलता है। आगे चलकर अपनी अकुलाहट को व्यक्त करते हुए ओक्काक कहता है – "मेरा कोई मित्र नहीं, कोई अंतरंग नहीं"[49] यहाँ ओक्काक को अलगाव की भावना, मानसिक पीडा देखने को मिलती है। ओक्काक की विक्षिप्तता उसके मनोविज्ञान पर मानो हावी हो चुकी है। वह महत्तरिका से कहता है – "तुम्हारा पति निश्चिंत है क्योंकि तुम मेरे पास हो।... इस धरती की किसी भी युवती को मुझसे कोई डर नहीं...।"[50] ओक्काक के रूप में यहाँ एक नपुंसक व्यक्तिका खण्डित व्यक्तित्व, असहाय्यता, अतृप्ति, विक्षिप्तता आदि अनेक मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का समावेश ओक्काक के व्यक्तित्व में हुआ है। ओक्काक की मनोवैज्ञानिकता नाटक की एक नयी प्रयोगधर्मिता है।

अब्दुल्ला खाँ – आधुनिक यंत्रयुग में व्यक्ति की खण्डित अवस्था एक बड़ी उपलब्धि है। नाटककार ने यहाँ उत्तरमुगलकालीन पात्र अब्दुल्ला खाँ को खण्डित दिखाकर उसको आधुनिक मानसिकता के साथ जोडने का प्रयत्न किया गया है। जब भारत में हिंदू-मुस्लिम एकता पैदा नहीं हो सकती है और मुस्लिम भी आपसमें लडने का मनसूबा नहीं बदलते हैं तब अब्दुल्ला खाँ को बहुत दुःख होता है इतनाही नहीं उसके छोटे भाई हुसैन अली की हत्या की जाती है। नाटककार ने अब्दुल्ला खाँ के व्यक्तित्व को अंकित किया है। अब्दुल्ला खाँ के शब्दों में – " अब्दुल्ला खाँ कुतुबुलमुल्क के दोजानू होने की वजह अपनी साँस के टूटने का अंदेशा नहीं, अपने ख्वाब के टूटने का खौफ़ है ... साँस तो रूहानी तौर पर टूट ही चुकी है। ... भाई चला गया, जो दायाँ हाथ था। वो बेताबी न रही, जो कौमोमजहब से परे कट्टे-इंसानी तलाश करती थी ... जज़्बा, अक़ीदा।... सब शर्मसार, सब शिकस्ता... बस, खुद्दारी की चोट खायी हुई ज़िद है, जो इस मिट्टी का हवाला दिये जाती है।"[51]

सुरेखा – "द्रौपदी" नाटक में सुरेखा द्रौपदी की भूमिका आदा कर रही है। प्रस्तुत नाटक की नायिका द्रौपदी अपने चार नकाबवाले पति मनमोहन के कारण अपनी मानसिकता को खो देती है। कुल पाँच रूपों में विभाजित मनामोहन के साथ दाम्पत्य जीवनयापन करते समय वह अनेक विसंगतियों को झेलती है। पति के विविध रूपों के साथ समझौता करना उसकी नीति बन चुकी है और यह उसके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। "आज के नाटककार का ध्यान व्यक्तिपर, व्यक्ति के अन्तसपर, अन्तस में छिड़े हुए आंतरिक संघार्ष के उद्घाटन के लिये आज़ का नाटककार मनोविज्ञान की सहायता ले रहा है।"[52] इस नाटक की नायिका सुरेखा इस कसौटी पर पूरी उतरती है।

सुरेखा अपने जीवन की त्रासदी को स्पष्ट करते हुये कहती है – "कभी वो एक-एक बोटी नोंच डालता है मेरी ... कभी उसके बदन से दूसरी औरत की बू आती है"[53] यहाँ सुरेखा अपने पति के खण्डित व्यक्तित्व पर सोचती है। पति के खण्डित व्यक्तित्व के कारण अकेलेपन के अनुभूति से ग्रस्त और व्याकुल बन चुकी है। उसका पूरा जीवन बेचैनी का शिकार हुआ है। अपने पति के भीतर इन पाँच रूपों से उसका मानस द्वंद्वग्रस्त बन चुका है। सुरेखा के रूप में इस हालत में महाभारतकालीन द्रौपदी की याद आये बिना नहीं रह पाती। उसका पति घर में अपनी पत्नी के सामने एक रूप प्रकट करता है तो प्रेमिका के समक्ष दूसरा।

सुरेखा का चरित्र आधुनिक पारिवारिक विसंगतियों का यथार्थ हल ढूँढने का प्रयत्न करता है। गैर औरतों के पाश में आबध्द होकर जीवन का आनंद लूटनेवाले पति की पीडा से सुरेखा पीडित बनती है। जिससे उसकी मानसिकता में बिगड़ाव की स्थिति उत्पन्न होती है और वह मनोरूग्ण बनती है। पति का खण्डित व्यक्तित्व सुरेखा के मानस को धक्का देकर उसे महाभारत की द्रौपदी बनने पर विवश करता है। उसके पति के चार नकाबों के माध्यम से आधुनिक व्यक्ति की खण्डित मानसिकता की

और प्रकाश डाला है। यह रंगयुक्ति एक नया चमत्कार पेश करती है। इस नाटक में भीतर-ही-भीतर व्यक्ति की टूटनशीलता और बिखराव को दिखाकर मनुष्य की मानसिकता की सूक्ष्म स्थितियों को नाटककार ने चित्रांकित किया है। पति-पत्नी के बीच के तनावपूर्ण संबंधों के कारण घर-परिवार को मकान में परिवर्तित कर दिया है।

सुरेखा का पति, मनमोहन एक ओर कंपनी के लिये तो दूसरी ओर पत्नी और बच्चों के लिये जीता है तीसरी ओर स्वयं अपने लिये जीता है और जीते-जीते कट जाता है। यहाँ मनमोहन की खण्डित अवस्था ने पूरे परिवार को खण्डित बना दिया है। सुरेखा और उसके पूरे परिवार पर मन-मोहन की अशांति हावी हो जाती है। सुरेखा की दृष्टि से परिवार के सभी रिश्ते एक आकर्षण मात्र हैं मन की पीडा से किसी को मतलब नहीं। सुरेखा अपनी जिंदगी में अपने पति के इन अलग-अलग रूपों से इतनी पीडित है कि वह अपने मन को शांति की गोदी में विराजमान करने के लिये अनाथ बच्चों की सोसायटी के सदस्यों के बहाने काम करने लगती है। यहाँ नाटककार ने पाश्चात्य सभ्यता से आक्रांत उच्चवर्गीय आधुनिक समाज के मनोविज्ञान को वाणी देने का प्रयत्न किया है। सुरेखा का पूरा जीवन अन्तर्द्वन्द्व, रूग्णमानसिकता, विसंगति और विडंबना से पूरा-पूरा भर उठा है और इसीसे उसका पूरा व्यक्तित्व खण्डित बन चुका है।

<u>मनमोहन</u> - मनमोहन "द्रौपदी" नाटक का केंद्रीय पात्र है और उसका संपूर्ण चरित्र मनोवैज्ञानिक आधार पर टिका हुआ है। वह ऐसे मनुष्यों का प्रतिनिधि पात्र है जो अपने संपन्न जीवन में ईमानदार रागात्मक, कामुक, अर्थलोलुप आदि सामान्य मानव की संपूर्ण प्रवृत्तियाँ अपने व्यक्तित्व में समाविष्ट कर चुका है। उसके नकाबों का वर्णन प्रतीकात्मकता को सहजरूप में उजागर करता है मनमोहन जबतक ईमानदारी बरतता है तबतक अपने छोटे से परिवार में बहुत कुछ सुख पाता है। जब वह बेईमानी का सहारा लेकर बेवफा बनकर पैसे प्राप्त करने की ओर आकृष्ट होता है तब भौतिक संपन्नता के परिणामस्वरूप उसमें कामुक प्रवृत्ति का जोर बढ़ने लगता है। गैर औरतों के बाहुपाश में आबध्द होकर परिवार और बालबच्चों से कट जाता है। मनमोहन मानसिक अशांति से भरकर अपनी बेचैनी को मिटाने के लिये शराब का शिकार हो जाता है। यहाँ उसकी टूटनशीलता स्पष्ट उभर उठती है। नौकरी में असफलता प्राप्त होते ही उसकी निराशा और भी बढ़ती है। बालबच्चों की चिंता से उसका जीवन पूर्ण रूप में बिखेर जाता है; वह अपनी टूटी हुई मानसिकता को संभाल नहीं पाता। उसकी बिगड़ी हुयी मानसिकता उसके व्यक्तित्व को पूर्ण रूप में खण्डित कर देती है।

मनमोहन की बिगड़ी हुयी मानसिकता प्रस्तुत नाटक की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वह बोलता एक है और सोचता एक है। सोचते-सोचते उसे जब अपना अलग नकाब याद आता है तब वह झट से उस में प्रवेश करता है। जैसे -

मैनेजर : आप को हो क्या गया है?

मनमोहन : कुकिंग गैस। नील की हाजिरी। टेलीफोन का नोटिस। बीमे का प्रीमियम। कार की बैटरी। बूस्टर।

मैनेजर : मुझे नम्बर सही मिला है न? -- आठ-पाँच-नौ-सात-एक?

मनमोहन : आठ-पाँच-नौ-सात-एक।

मैनेजर : रैस्टो कैमिकल्स--हैड ऑफिस, बम्बई ब्रांच ऑफिस, दिल्ली--मैनेजर-- घनश्याम चोपरा -- यानी कि मैं-- आप मनमोहन खन्ना -- सीनियर असिस्टेंट मैनेजर --

पीले नकाबवाला : जी हाँ, सर! बोल रहा हूँ।

मैनेजर : मैं जानना चाहता हूँ कि वो रिपोर्ट कहाँ तक पहुँची?"[54]

मनमोहन आंतरिक द्वंद्व से आकुल बन बैठा है। मनमोहन और काले नकाबवाले इन दोनो में चलता हुआ कथोपकथन मनमोहन की आंतरिक द्वंद्वता पर खुलकर प्रकाश डालता है। जैसे -

" मनमोहन : हमेशा मेरे साथ रहते हो?

काले नकाबवाला : हाँ! तुम्हारा सब से पुराना साथी तो मैं ही हूँ। तुम्हारा सगा भाई। तुम्हारा सच्चा दोस्त।"[55]

सफेद नकाब और काले नकाब में जो संवाद शुरू है इसमें कई बातों की अभिव्यक्ति हो गयी है। जिस से पता चलता है कि सफेद नकाबवाला मनमोहन आंतरिक पीडा से पूर्णतः मनोरूग्ण बन बैठा है। मनमोहन की रूग्ण मानसिकता और द्वंद्वात्मकता उसे पूरा संत्रस्त करती है। यांत्रिक युग की चहल पहल के कारण उसका व्यक्तित्व पूर्ण मात्रा में खण्डित हो चुका है। मनमोहन का एक विभाजित व्यक्तित्व काले नकाबवाला है। इस काले नकाबवाले का खण्डित व्यक्तित्व उसके ही शब्दों में देखिए - "जो टूट गया, वो टूट गया। दोबारा जुड़ नहीं सकता। और अगर जोड़ेंगे भी, तो जोड़ साफ दिखाई देगा और अंदर की चीज रिस-रिस कर बाहर आ जायेगी। इस लिए समझदार आदमी क्या करता है? -- नया गिलास ले लेता है।"[56]

मनमोहन की संपूर्ण कहानी एक विघटित व्यक्तित्व की कहानी है। उसकी बहुरूपी प्रवृत्तियाँ उसके परिवार के लिए एक बड़ी त्रासदी बन बैठी है। मनमोहन और उसके चारों रूप मनुष्य के भीतर के खण्डित व्यक्तित्व को प्रकट करते हैं। उसकी मानसिकता इतनी बिगड़ चुकी है कि सारा जीवन उसे नीरस लगने लगा है। अपनी पत्नी से ऊबकर इस ऊबकायी को मिटाने के लिये अंजना, रंजना, वंदना के सान्निध्य में रहना चाहता है। वह इतना अस्वस्थ बन जाता है कि सब कुछ छोड़कर प्रकृति की गोद में शरण लेना चाहता है। जिंदगी में फिर चैतन्य पाने के लिये "बूस्टर" जैसी जीवनदायिनी शक्ति को पाना चाहता है।

मनमोहन घर और बाहर कई रूपों में विभाजित हुआ है। उसका पूरा जीवन

अन्तर्द्वन्द्व, रूग्ण मानसिकता, विसंगति, विडंबना, कामुकता और अर्थलोलुपता से पूरा-पूरा टूटा हुआ है। मनमोहन के खण्डित व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ. गजानन मुर्वे ने कहा है - "चार नकाब से युक्त मनमोहन का सभ्य शिक्षित सद्प्रवृत्तियों वाला सुसंकृत लेकिन आक्रोश से युक्त रूप है। मनमोहन का समाज जीवन से ऊब जाना, तनाव, आशंका आदि से ग्रस्त होना, परिवार से और खुद के व्यक्तित्व से टूट जाना, उसके खण्डित व्यक्तित्व का चित्रण, टूटे हुये जीवन संदर्भ का आविष्कार ही है।"[57]

निष्कर्ष -

साहित्य में मनोवैज्ञानिकता की धारा जैनेंद्र से प्रवाही हुई तब से लेकर अबतक सभी साहित्यिक विधाओं में मनोविज्ञान परक अनेक प्रयोग हुए। खासकर साठोत्तरी कालखण्ड के नाटक साहित्य में ये प्रयोग आत्यंतिक नये-नये लक्षित होते हैं। वास्तव में सुरेंद्र वर्मा एक प्रयोगधर्मी मनोवैज्ञानिक नाटककार हैं। उनके सभी नाटकों में कैसी-न-किसी रूप में मनोविज्ञान अंकित हुआ है।

* मनोविज्ञान के धरातल पर हम यह देख पाते हैं कि सुरेंद्र वर्मा ने "आठवाँ सर्ग" और "द्रौपदी" नाटकों में प्रेम और यौनजन्य मनोविज्ञान को आधुनिक जीवन संदर्भ में शब्दांकित किया है। "आठवाँ सर्ग" की प्रियंवदा और अनसूया तथा 'द्रौपदी' के अलका-राजेश, अनिल-वर्षा, सुरेखा, अंजना, आदि पात्र इसके अच्छे उदाहरण हैं।

* स्वप्न मनोविज्ञान की दृष्टि से भी नाटककार ने "छोटे सैयद बड़े सैयद" तथा "एक दूनी एक" नाटकों में अभिनव प्रयोग किया है। हर एक व्यक्ति के अपने-अपने सपने होते हैं। कोई राजा बनकर जीना चाहता है तो कोई कल्पनाशील दुनिया में विचरण करने की सोचता है जिसमें व्यंग्यात्मकता प्रमुख है। "छोटे सैयद बड़े सैयद" नाटक का हुसैन अली राजा का स्वप्न रचता है, तो अब्दुल्ला खाँ राष्ट्रीय एकात्मकता का स्वप्न देखता है। दो भिन्न स्वभाव के व्यक्तियों के दो भिन्न स्वप्नों को नाटककार ने यथार्थ रूप में चित्रित किया है। "एक दूनी एक" के आदमी और औरत के स्वप्न आधुनिक गृहस्थी जीवन की व्यंग्यात्मकता को व्यक्त करते हैं।

* "आठवाँ सर्ग", "द्रौपदी", "छोटे सैयद बड़े सैयद" नाटकों में नाटककार ने प्रभावजन्य मनोविज्ञान को चित्रित किया है। मनुष्य संवेदनशील तथा बुध्दिजीवी प्राणी है। कामुकता उसकी एक अनिवार्य माँग है। मनुष्य की इस प्रवृत्ति को "आठवाँ सर्ग" के प्रियंवदा, अनसूया, "द्रौपदी" के अनिल, अलका, राजेश, वर्षा, मनमोहन, सुरेखा, "छोटे सैयद बड़े सैयद" के अब्दुल्ला खाँ तथा हुसैन अली पात्रों की मनोदशा के माध्यम से अंकित किया गया है।

* असंगत जीवन आधुनिक जीवन की एक विशिष्टता है। आज के यांत्रिक जीवन में तथा तनाव और संघर्षपूर्ण जीवन में मनुष्य आदर्श जीवन व्यतीत नहीं कर सकता है। अतः परिस्थितिजन्य उसे असंगत जीवन से ही गुजरना पडता है। असंगत जीवन न शाप है न वरदान। वह आज की यथार्थ स्थिति

है। नाटककार सुरेंद्र वर्मा ने मनोविज्ञान के आवरण में "द्रौपदी" तथा "एक दूनी एक" नाटकों में असंगत जीवन का मार्मिक चित्र खींचा है। "द्रौपदी" नाटक का पूरा परिवार तथा "एक दूनी एक" के पात्र आदमी और औरत के माध्यम से नाटककार ने महानगरीय जीवन की असंगति को वाणी दी है, जिसमें मनोविज्ञान का चोला यत्र-तत्र पहनाया गया है।

* सुरेंद्र वर्मा एक सजग मनोवैज्ञानिक नाटककार हैं। आज का मानव टूटा है, विभाजित है। यह जीवन की यथार्थता है। मानव जीवन में मानव का व्यक्तित्व सर्वोपरि होता है। आज के जीवन में टूटन है, घुटन है, तनाव है, संघर्ष है, अतृप्तता है और अशांति है। इन सभी कारणों से मानव का व्यक्तित्व टूटता है। इस लिए आज का मानव आधा-अधूरा है। नाटककार सुरेंद्र वर्मा ने आधुनिक जीवन संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में प्रवरसेन, प्रभावती (सेतुबंध), कालिदास (आठवाँ सर्ग), शीलवती, ओक्काक (सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक), अब्दुल्ला खाँ (छोटे सैयद बड़े सैयद), सुरेखा, मनमोहन (द्रौपदी) आदि पात्रों का खण्डित व्यक्तित्व शब्दांकित किया है जो नाटककार की मनोविज्ञान संबंधी गहरी सूझ का परिचायक है।

- x -

संदर्भ –

1. यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण – डॉ. मधुकर जैन, पृ. 18
2. भारतीय मनोविज्ञान – डॉ. यदुनाथ सिन्हा अनुवाद – डॉ. गोविंद प्रसाद भट,
3. वात्सायन, कामसूत्र, हिंदी अनुवाद, बिपिनचंद्र बंधु, पृ. 20
4. आठवाँ सर्ग – सुरेंद्र वर्मा, प्र. सं. 1976, पृ. 19
5. वहीं पृ. 21
6. साठोत्तरी हिंदी नाटक-डॉ. विजयकांतधर दूबे (साठोत्तरी हिंदी नाटक – प्रेम और यौन दृष्टि डॉ. कालिर्किकर), पृ. 96
7. आठवाँ सर्ग – सुरेंद्र वर्मा, प्र.सं. 1976, पृ. 24
8. तीन नाटक (द्रौपदी) – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क.1972, पृ. 101
9. वही– पृ. 119
10. छोटे सैयद बड़े सैयद – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1981, पृ. 52
11. वही – 119
12. वहीं – पृ. 96
13. एक दूनी एक – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1987, पृ. 81
14. वही – पृ. 82
15. वहीं – पृ. 85
16. आठवाँ सर्ग – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1976, पृ. 38
17. तीन नाटक (द्रौपदी) – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1972, पृ. 103
18. छोटे सैयद बड़े सैयद –सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1981, पृ. 119
19. वहीं – पृ. 87
20. वहीं – पृ. 140
21. तीन नाटक (द्रौपदी) – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1972, पृ. 101–102
22. वहीं – पृ. 88–90
23. एक दूनी एक – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1987, पृ. 9
24. वहीं – पृ. 14
25. वही – पृ. 86
26. वहीं – पृ. 98
27. वहीं – पृ. 52–53

28. तीन नाटक (सेतुबंध) – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1972, पृ. 17

29. वही – पृ. 40

30. सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में रंगमंचीयता – देवेंद्र कुमार गुप्ता, प्र.संस्क.1986, पृ. 87

31. हिंदी नाटक और नाटककार – डॉ. सुरेशचंद्र शुक्ल, संस्क. 1977, पृ. 149

32. तीन नाटक (सेतुबंध) – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क.1972, पृ. 35

33. वही – पृ. 31

34. समसामायिक हिंदी नाटक, बहुआयामी व्यक्तित्व – डॉ.सुंदरलाल कथूरिया, पृ. 77

35. आठवाँ सर्ग– सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क.1976, पृ. 45

36. वही – पृ. 56

37. तीन नाटक (नायक खलनायक विदूषक) – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1972, पृ. 59

38. कल्पना, फरवरी 1974, पृ. 20
(सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में रंगमंचीयता – देवेन्द्रकुमार गुप्ता,प्र.संस्क.1986,पृ.38 से उद्धृत)

39. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1975, पृ. 26

40. वही – पृ. 27

41. वही – पृ. 39

42. वही – पृ. 28

43. वही – पृ. 24

44. वही – पृ. 43

45. वही – पृ. 41

46. वही – पृ. 31

47. वही – पृ. 33

48. वही – पृ. 34

49. वही – पृ. 35

50. वही – पृ. 42

51. छोटे सैयद बड़े सैयद – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1981, पृ. 145

52. आधुनिक हिंदी नाटक में संघर्षतत्व – डॉ. ज्ञानराज गायकवाड, प्र. संस्क. 1975, पृ. 10

53. तीन नाटक (द्रौपदी) – सुरेंद्र वर्मा, प्र. संस्क. 1972, पृ. 128

54. वही – पृ. 95

55. वही – पृ. 131

56. वही – पृ. 133

57. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. गजानन सुर्वे, प्र.स. 1987, पृ.379